ISSN 2455-5169

परिवर्तन : साहित्य, संस्कृति एवं सिनेमा की वैचारिकी

किन्नर जीवन का संवेदनात्मक दास्तान : दरमियान इन बिटवीन

फहमी वी. मीरान

एस एस यू एस कालडी

fahmivmeeran@gmail.com

हमारे देश में सदियों से लिंग समत्व का मसला जारी है। आजकल व्यक्ति, समाज और साहित्य इसके संघर्ष में हैं। सिनेमा और मीडिया भी इसमें अपनी भूमिका निभा रहे हैं। सिनेमा आज का सबसे प्रभावशाली माध्यम है। आत्मा के तह तक जाकर वह असर करता है। एक अच्छी फिल्म जनता को मनोरंजन के साथ कुछ सोचने हेतु छोड़ देती है। स्त्री और तीसरे लिंग के लोगों को समाज में अपना हक़ दिलाने के लिए फिल्म क्षेत्र से भी तमाम कोशिशें जारी हैं। आजकल स्त्री के सशक्त पात्रों को केंद्र में लाने वाली फिल्में इसके उदाहरण हैं। स्त्री के लिए उसका स्त्री होना हशियेकृत होने का कारण बन गया तो किन्नरों के लिए उनकी लैंगिक अशक्तता। इसी कारण से पूरे समाज में वे तिरस्कृत होते रहे हैं। संविधान और कानून से सहमति होने के बावजूद भी समाज की ओर से किन्नरों को उचित सहभागिता नहीं मिल रही है।

समाज में सभी प्राणियों की तरह किन्नरों का भी अपना अस्तित्व है। कोइ भी किन्नर किसी तरह के शाप के कारण नहीं जन्मा है। वे भी मानवीयता के हकदार हैं। लेकिन समाज उसे अमानवीय दृष्टि से देखता है। तीसरे लिंग के लोगों के लिए अपने अस्तित्व को स्वीकारना ही पहला पड़ाव है। उसके बाद उन्हें परिवार और समाज से मुकाबला करना पड़ता है। समाज के डर से उनका परिवार सच को छिपाकर रखता है। जब समाज के सामने सच्चाई का पर्दाफाश होता है तो परिवार भी उसे छोड़ देता है। इसी तरह परिवार और समाज से तिरस्कृत होकर उसे एक अकेली जिन्दगी जीना पड़ता है। फिर सामाजिक, आर्थिक सहायता के अभाव से वे अपने बिरादरी में जाकर कैद हो जाते हैं। वहाँ भी उसे मनचाहे तरीके से जीना मुश्किल होता है। कभी कभार बिरादरी के कायदे क़ानून से त्रस्त होकर कई किन्नर लोग अपना जीवन तक त्याग देते हैं।

आजकल साहित्य में किन्नरों की चर्चा जारी है। फिल्म के क्षेत्र में तीसरे लिंग के त्रासद जीवन पर बहुत पहले ही चर्चा हुई है। विश्व सिनेमा में भी किन्नरों को केंद्र में रखकर फ़िल्में बनीं हैं। चीनी निर्देशक अन्हुई के 'माई वे', बंगलादेश के 'कोमन जेंडर', पाकिस्तान में बनी 'बोल' आदि इसके उदाहरण हैं।

हिन्दी फिल्मों के शुरुआती दौर में किन्नरों के प्रति परिहास का भाव नज़र आता था। लेकिन बाद के सिनेमा में सामाजिक यथार्थ को प्रमुखता मिलने लगी। इस समय में कई ऐसे फिल्मों का निर्माण होता रहा, जिनमें किन्नरों की भावनाओं को सकारात्मक दर्जा प्राप्त हुआ। इन फिल्मों के कारण किन्नरों के प्रति समाज की मानसिकता में भी बदलाव आया। आज किन्नरों के लिए संविधान द्वारा जो सामाजिक, राजनैतिक एकता प्राप्त हुई है, जिसमें साहित्य और सिनेमा जैसे माध्यमों की भागीदारी भी शामिल है।

कई फिल्मों ने किन्नरों को केंद्रीय पात्र के रूप में चित्रित किया हैं। इसके जरिये उन लोगों के जीवन संघर्ष की संवेदनात्मक कहानी दर्शायी गयी है। हिन्दी फिल्मों में, महेश भट्ट की 'तमन्ना' (1997), कल्पना लाजमी की 'दरमियान ' (1997), योगेश भरद्वाज की 'शबनम मौसी'(2005), महेश भट्ट द्वारा निर्देशित 'सड़क'(1991), श्याम बेनेगल के 'वेलकम टू सज्जनपुर(2008)', मधुर भंडारकार की 'ट्राफिक सिग्नल(2007)' आदि इसके उदाहरण हैं। इनमें किन्नरों के त्रासद जीवन को केद्र रूप में रखकर फिल्माया गया है। इन फिल्मों में किन्नरों के लिए सहानुभूति मात्र न दिखाकर, उन लोगों के प्रतिरोध और संघर्ष को भी महत्व दिया गया है। यह एक तरह से प्रेक्षक को आत्मालोचन के लिए भी कुछ छोड़ देते हैं।

1997 में निकली 'दरमियान इन बिटवीन' फिल्म एक तरह से किन्नरों के संवेदनात्मक जीवन का ज़िंदा दस्तावेज है। कल्पना लाजमी के निर्देशन में बनी इस फिल्म का संवाद-लेखन कार्य भी उन्होंने खुद किया है। कहानी और पटकथा उन्होंने उर्मी जुवेरकर के साथ तैयार किया है। इसके निर्माण का कार्य आर वी पंडित ने किया है। 'दरमियान ईन बिटवीन' फिल्म हिजड़े जीवन की दरमियान की मात्र नहीं बल्कि फ़िल्मी क्षेत्र के संघर्ष भरे जीवन की कहानी भी बताती है। लेकिन यहाँ पर चर्चा पूरी तरह से इम्मी की उन दरमियान की ओर है।

फिल्म का मुख्य पात्र असल में इम्मी है। फिल्म की शुरुआत से लेकर इम्मी के चारित्रिक बदलाव और उनकी संवेदनाओं का प्रयाण है। एक किन्नर चरित्र के जीवन की हर पहलू को, हर मानसिकता को जोड़ने का प्रयास निर्देशक ने किया है। फिल्म के शुरुआत में ज़ीनत भेखाम के अदाओं का अनुकरण करते हुए लिपस्टिक लगाकर इम्मी बड़ी अम्मी के पास पहुँचती है। तब बड़ी अम्मी कहती है- "ये क्या जान, मर्दों के चेहरे में मूछे अच्छी लगती है, होठों की लाली नहीं।" रचनाकार शुरुआत से उस दाने को छोड़ा है। बस दर्शक को उसका पता देर से लगता है। असल में दर्शक खुद इम्मी की संवेदनाओं के साथ चलता है।

एक चरित्र के लिए अपना अस्तित्व ही सबकुछ होता है। जो व्यक्ति अपने को सबसे अलग पाकर समाज में तनहा हो जाता है वहाँ पर हाशियापन शुरू होता है। चाहे वह स्त्री हो या और कोई हाशिएकृत वर्ग का हो, उसके अस्तित्व के कारण वह अपने को सबसे अलग पाता है। इसी तरह अपने चरित्र का एहसास हो जाने से अपने आपसे संघर्ष करता है। इम्मी का जीवन दरमियान तब शुरू होता है, जब वह अपने को सबसे अलग पाता है। दोस्तों के साथ मिलकर सबसे आगे सूसू करने वाले को इनाम देने का खेल खेलते हैं। तब इम्मी बैठकर सूसू करता है। सारे लड़के उसे देखर 'लड़की' बोलते हैं। वह घर आकर अपनी लुल्लू ढूँढती है। इस दृश्य को कल्पना जी अत्यंत मार्मिक शैली में चित्रित करती हैं। सारे कबोर्ड में अम्मी के साथ इम्मी अपनी लुल्लू ढूढती है। इम्मी के घरवाले भी उसके चरित्र को स्वीकारने के लिए कतराते हैं। इसी कारण से इम्मे को लड़का बनाकर पालते हैं। उसी गली के चंपा नामक एक हिजड़ा इम्मी को अपनी बिरादरी के लिए मांगने आती है तो अम्मी कहती है "चम्पा खुदा के वास्ते छोड़ दे,..... इसे छोड़ दे,..... एक ही तो चिराग है इस खानदान का" इन शब्दों में अम्मी के मन की पुत्र-प्राप्ति की इच्छा ही प्रतिफलित है।

इम्मी को अपने जीवन की तमाम खुशियां किन्नर होने के कारण नष्ट हो जाती हैं। अम्मी की तीन बेटियां हैं। एक जीनत बेखम जो मशहूर फिल्म एक्ट्रेस है, एक बेटी पति के साथ घर में ही रहती है। उसे कोई वारिस नहीं है। इम्मी को हम अम्मी के देर से जन्मी बच्चे की तरह सोचती है। लेकिन एक बार चम्पा के मुंह से सच का पता इम्मी को होता है। "ये जीनत तेरी अबाना है, बता रही है तेरी, माँ.... तू हिजड़ा जन्मा ना अपना बीटा कही छाती से लगाने से शर्म आयी इसे" इम्मी को अपने किन्नर होने के कारण अपने माँ – बाप के प्यार से भी वंचित किया गया था। असल में जीनत ही इम्मी की माँ है। किन्नर जन्म लेने के कारण उसके पापा भी इसे छोड़कर चले गए थे। जीनत को इम्मी अबा बुलाते है। इम्मी को इस सच्चाई जानते हुए भी आगे जीनत माँ बुलाने से रोक लेती है।

समाज किन्नरों को हशियेकृत कर देता है। लेकिन वह अपने परिवार में भी महफूस नहीं है। उसे अपने अस्तित्व को पहचानने के लिए भी परिवार रोक देता है। इसीलिए किन्नर वर्ग घर छोड़कर जाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। घर के लोग इम्मी के चरित्र पर ऊंगली उठाते वक्त भी जीनत उसकी पौरुष को दिखाने के लिए एक वेश्या को इम्मी के कमरे में भेजती है। यह घटना इम्मी को पूरी तरह से तनहा कर देता है। इम्मी अपने ही घर में और समाज में एक तरह से तनहा हो जाता है। उनके शब्दों में यह तनहाई साफ़ झलकती है। "इस घर में सब हम से दूर हो जाते रहे हैं। हमारे तो कोइ न सुनता न घर में और न घर के बाहर।"

किन्नरों का सबसे बड़ा संकट उसके जीवन के लिए अर्थ जुटाना है। जीवन-यापन के लिए उसे कोइ भी अवसर नहीं होता है। समाज भी उसे अकेला कर देता है। उन्हें भी हर हिजड़ों की तरह जीवन बिताने के लिए अभिशप्त कर देता है। ज़ीनत ने नशेपन से सारे दौलत को बर्बाद कर दिया। अंत में पैसे के लिए इम्मी को भी तालिया मारकर नाचना पड़ता है। जब उसे समाज के कामोत्तेजक लोगों ने मिलकर बलात्कार किया तो वह हिजड़ों के बीच से भी निकल जाता है। इसके बाद वह अपने आपको हिजड़ा बोलने से भी कतराती है। वह बिना चरित्र के अपने को एक कलाकार मात्र कहता है। वह कहता है "मैं हिजड़ा नहीं हूँ। अदाकार... मैं एक कलाकार हूँ। जिसे सिर्फ एक रोल अदा करने के लिए बुलाया है।" इन शब्दों में इम्मी के मन का प्रतिरोध ही नजर आता है। उसे अपने जीवन में कोइ भी राह नहीं है। आगे के जीवन में कोई भी हताशा नहीं। फिर भी वह सारे हिजड़ों की तरह दर्दनाक जिन्दगी जीने के लिए तैयार नहीं होता। वह कोठे से निकल जाता है। इसमें किन्नरों के लिए नई चेतना प्रदान करने की कोशिश होती है ।

हर व्यक्ति को अपने जीवन की कोई वजह और लक्ष्य होते हैं। एक स्त्री के लिए माँ बनना अपनी पूर्णता है। लेकिन एक किन्नर के लिए अपने जीवन में कोइ भी मंजिल नहीं। इसीलिए वे अन्धकार भरे जीवन को जैसे-तैसे बिताते है। इम्मी के जीवन में प्रकाश बनके एक बच्चा आ जाता है। उसे वह अपने जीवन की नई रोशनी बनाकर जीने लगता है। इस दृश्य में गूंज रहे गीत में यही अल्फ़ाज हैं।"

कोइ तो जीने का बहाना हो
कोइ वादा हो जो निभाना हो...
कोइ सफ़र तो कोइ तो रास्ता
कोइ तो मंज़िल है।
सुन ले ये दिल दीवाने
अपने देश में हम है परदेशी....

अपने ही देश में अजनबी बनकर जीनेवाले किन्नरों के मन का संवेदना का तस्वीर ही इन शब्दों में है।

सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक हिस्सेदारी से भी किन्नर वंचित हैं। उन्हें मंदिरों में जाने के लिए भी मना किया जाता है। कोई भी अच्छे काम करने के लिए समाज से सहभागिता नहीं मिलती है। आर्थिक स्वायत्तता न होने के कारण उसे वेश्यावृत्ति करनी पड़ती थी। चाहे जितने मानसिक और शारीरिक शोषण हो जाएँ उसे कोई और काम करने के लिए समाज इजाजत नहीं देता था। बैंक वाले

भी हिजड़ों को खाता खोलने नहीं देते। इसीलिए उसकी कमाई अपने कपड़ों के पीछे छोटे-छोटे पॉकेटो में रखनी पड़ती थी। एक हिजड़े के शब्दों में "हाय, खाता ही क्यों मोई तारैन में जाने नहीं देते वोट नहीं देने देते। हम जैसे इंसान ही नहीं है। हमारे लिए क्या है।" इसी तरह उस समय हिजड़ों को समाज में समानाधिकार नहीं था । इस बात की ओर इशारा करते हुए कल्पनाजी ने हिजड़े जीवन के तमाम दर्द को उजागर करने की कोशिश की है। आज समाज में किन्नरों को संविधान ने समानाधिकार प्रदान किया है। आज कल वोट देने का हक़ है, खाता खोलने का हक़ है। लेकिन इन सारी सुविधाओं के लिए सिनेमा और मीडिया की भागीदारी भी शामिल है।

किन्नर जीवन की दरमियान की कहानी सारे अधिकारों के मिलने के बाद भी सुखद पूर्ण नहीं है। किन्नरों को समाज और परिवार अकेला कर देता है, अपने ही बिरादरी के लोग भी उसे अच्छे जीवन बिताने नहीं देते है। एक बार हिजड़ों की बिरादरी में पहुंचे तो वहाँ से छूटना मुश्किल है। यहाँ तक कि अपनी बिरादरी की शक्ति बढाने के लिए बच्चों को उठाकर ले जाते है। इसके लिए बच्चा किन्नर होना भी जरूरी नहीं है। उत्तर भारत में आज भी ऐसे लोग मौजूद हैं। इस फिल्म में भी ऐसा एक प्रसंग है। बिरादरी से बाहर जाने के कारण वे लोग इम्मी के नए काम भी रुकवा देते हैं। उसे इज्जत से जीने नहीं देते। इसी तरह इम्मी बिरादरी में वापस जाने के लिए मना करते वक्त उसके बेटे को हिजड़ा बनाने की कोशिश करता है। इन सबसे तंग आकर इम्मी बच्चे को सुरक्षित हाथों सौंपकर अम्मी के साथ परलोग निहारते है। उनका आत्मत्याग असल में शोषकों के प्रति विद्रोह है । उस नई दुनिया में कदम रखते ही इम्मी को अपना माँ बुलाने का हक़ मिल जाते है । माँ का प्यार मिल जाता है । तब पीछे गूंजने वाले संगीत से उनकी मन की गम ही प्रतिफलित है ।

"सोचा है हम दूर चले जाए
अपने सपनो की दुनिया पाए
उस दुनिया में प्यार के फूल
और खुशियों की मोती है।
जो न दी इस दुनिया ने ...."

समाज में किन्नरों का जीवन अत्यंत संघर्षशील है। वे पूरी तरह से एक स्त्री या पुरुष नहीं बन पाते हैं। इस कारण से वे अन्दर ही अन्दर घुटते रहते हैं। पूरे फिल्म में ज्यादातर इम्मी पुरुष वेश में आता है। सितारा बनकर समाज से अच्छी प्रतिक्रया नहीं मिली है। फिर भी सितारा बनकर स्त्री वेश में सज –

संवरकर उसे अपनी मन में पूर्णता प्राप्त हुई थी। यह पूर्णता सिर्फ बाहरी तौर पर मात्र है। इसीलिए कोई भी किन्नर अगले जन्म में कभी भी किन्नर जन्म लेने की इच्छा नहीं रखते हैं। इसके लिए इम्मी का जीवन मात्र नहीं फिल्म का नकारात्मक पात्र चम्पा का जीवन भी साक्ष्य है। चम्पा बिरादरी की नेता है। जब चम्पा के हाथों से इम्मी अपने बेटे को बचाते वक्त इम्मी अपने पैदईशी हिजड़े के हक़ से चम्पा को हर जन्म हिजड़ा जन्म लेने का शाप देता है। उस समय चम्पा फूट फूटकर रोती है। फिर चम्पा कहती है। "एक बार हिजड़ा होके बड़ी मुश्किल से काटी है जिन्दगी मैंने, नफ़रत के कड़वी घुट पी के सबसे लड़ के सबसे.... अपने आप जैसे-तैसे ज़िंदा रही हूँ मैं... फिर से हिजड़ा जन्म ने की ताकत नहीं है मुझमें...." इसी तरह किन्नर जीवन की हर मानसिकता को निर्देशक ने व्यक्त किया है।

कल्पना जी ने फिल्म को पूरी रागात्मकता के साथ बुना है। फिल्म की कहानी मात्र नहीं; संवाद, दृश्य योजना, संगीत यहाँ तक कि पात्रों का चयन भी कल्पना जी ने अत्यंत सूक्ष्मता से किया है। बीच-बीच में 'जावेद अक्तर' की तूलिका में बने शब्दों को 'भूपन हजारिका' के निर्देशन में हुई संगीत पूरी मानसिक संवेदना को प्रतिफलित कर देती है। पात्रों का चयन भी उन्होंने बहुत ही सोच समझकर किया है। इम्मी के रोल में 'आरिफ जकारिया' का अभिनय भी बखूब था। उनकी यह पहली फिल्म है। लेकिन उनके अभिनय में अत्यंत जीवंतता है। 1946 के प्रमुख एक्ट्रेस के रूप में किरण खेर को चित्रित किया है। किरण जी ने एक प्रमुख अभिनेता से समय के साथ हुई हर मोड़ को अत्यंत सुन्दर तरीके से अभिनय किया है। एक और अपनी प्रसिद्धि ओर प्रेमी को खोने की दर्द, दूसरी ओर अपने बेटे की किन्नर होने का सच उसका मानसिक संतुलन खो देता है। उसके बीच भी वे उस सच्चाई को अपने आप सम्भाल नहीं पाती है। उनका एक डायलाग है - "इम्मे ज़नखा है, ज़नखा ही जन्मा था। हमारी कोख से ज़नखा पैदा हुआ.... ख़ूबसूरत ज़ीनत ने ज़नखा जन्मा... क्यों...? क्यों...? " इस सीन का उन्होंने अत्यंत मार्मिक तरीके से अभिनय किया है।

सिनेमा की भाषा दृश्यों से बनती है। इस फिल्म में दृश्य योजना कलपना जी ने लाजवाब किया है। हर-एक दृश्य का अपना महत्त्व है। इम्मी के जीवन के विभिन्न मोड़ में उनके तन्हाई को दर्शाने के लिए नदी के किनारे में बैठने वाले उनके दृश्य अत्यंत काव्यात्मक प्रतीत होता है। इसी तरह इम्मी को बच्चा मिलते समय एक नई सुबह की रोशनी और सामने एक पिता अपने बेटे का हाथ पकड़ते हुए सिर में कोटरी लेकर चले जाने वाला दृश्य इम्मी के आगामी जीवन की और इंगित करता है।

फिल्म की सबसे बड़ी प्रभावी चीज उसकी कहानी और संवाद है। पूरी कहानी को कल्पना जी ने सुन्दर दृश्यों से सुसज्जित किया है। फिल्म में संवाद के एक-एक शब्द बहुत कुछ कह जाता है। फिल्म के अंत तक आते आते इम्मी का एक डायलोग है - "इस दुनिया में न हिजड़े के दुनिया में, दोनों की दरमियान हूँ मैं" इन शब्दों में पूरे फिल्म की कहानी निहित है। समाज और अपने लोगों के बीच दरमियान बनाकर जीवन बिताने वाले इम्मी की गाथा दर्शकों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसी तरह पूरी फिल्म में किन्नर जीवन के हर मोड़ का तस्वीर खीचता है।

सिनेमा में समाज का ज़िंदा तस्वीर प्रतिफलित होता है। दरमियान फिल्म असल में किन्नरों का संवेदनात्मक दास्तान है। किन्नर जीवन के मन की हर संवेदनाओं को पकड़ने की कोशिश कल्पना जी ने की है। ऐसी फिल्मों से समाज में बहुत कुछ बदलाव की संभावना है। किन्नरों के प्रति समाज की निगाह में परिवर्तन लाने के लिए भी ऐसी फिल्में उपयोग सिद्ध हैं। इसी तरह सिनेमा समाज के लिए आत्मालोचन का दाने छोड़ें। यही उम्मीद है।